॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ शिवमहिम्नः स्तोत्रम्

भाषा-टीका सहितम्

महिम्नः पारन्ते परम विदुषो यद्य सदृशी ।
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपितदवसन्नास्त्वयिगिरः ॥
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधिगृणन्
ममाप्येषस्तोत्रः हरनिरपवादः परिकरः ॥१॥

हे शंकर ! जब आप की स्तुति करने में ब्रह्मा आदिकों की भी वाणी रुक जाती है, तब साधारण मनुष्य द्वारा की गई आपकी स्तुति उचित नहीं हो, तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि आपकी महिमा का पार पाना सर्वथा कठिन है । परन्तु फिर भी अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार सभी लोग आपकी स्तुति किया करते हैं; इसलिए मेरी यह स्तुति निर्दोष होती हुई कल्याण कारिणी होवे॥१॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्यायं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ॥

सकस्यस्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्यविषयः
पदेत्वर्वाचीने पतति न मनःकस्य न वचः ॥

हे भगवान ! आपकी महिमा वाणी और मन के मार्ग से सर्वथा दूर है। इसीलिए तो वेद चकित होता हुआ 'नेति, नेति' अर्थात् कोई अन्त नहीं है, ऐसा पुकारा करता है। अतः भला कहिए, तो सही, आपकी महिमा के गुण और विषयों का पार किस प्रकार पाया जा सकता है ? ॥१॥

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तवब्रह्मन् किंवागपिसुरगुरोर्विस्मयपदम् ॥
ममत्वेतां वाणीं गुण कथन पुण्येन भवतः ।
पुनामीत्ये थेंस्मिन्पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ।३।

हे संसरेश्वर ! अमृत के समान परम मधुर वाणी के निर्माता, जब आप ही हैं, तो फिर वृहस्पतिजी की वाणी भी आप को क्या प्रसन्न करेगी ? हे त्रिपुरारि ! अब कोई ऐसा कहे कि; 'जब उत्तमोत्तम वाणी के निर्माता स्वयं शङ्कर हैं, तब तू स्तुति करने का क्यों वृथा प्रयास करता है?, इस का उत्तर यह है कि, मैं अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए ही अपनी बुद्धि के अनुसार उस शिव स्वरुप परमेश्वर की स्तुति करता हूं ॥३॥

तवैश्वर्यंयत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् ।
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासुतनुषु
अभव्यनाम स्मिन्वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैकेजडधियः॥४।

हे मन इच्छा वरदान देने वाले ! संसार कोउत्पन्न, पालन और नाश करने वाले ! तीनों वेदों के स्वरूप और तीनों गुणों को धारण करने वाले-आपके सर्वोत्तम ऐश्वर्य की निन्दा, कई मतिमन्द-मनुष्यों द्वारा इस लोक में की जाती है । यद्यपि वह निन्दा पापियों के मन को प्रसन्न करने वाली है, तो भी आपके सर्वज्ञादि गुणों के लिए सर्वथा अनुचित है ॥४॥

किमीहः किंकायः सखलुकिमुपायस्त्रिभुवनं ।
किमाधारोधाता सृजतिकिमुपादान इति च
अतर्क्यैश्वर्यैत्वय्यनवसरदुस्थोहतधियः ।
कुतर्कोयंकाश्चिन्मुखरयति मोहायजगतः ॥५॥

हे भगवान् ! यद्यपि मन्दमति नास्तिक अपनी वाचालता से इस प्रकार भोली-भाली जनता को ठगा करते हैं कि—यदि परमेश्वर सृष्टिकर्ता है तो वह किस प्रकार से, कौन से शरीर द्वारा, कौन सी युक्ति से, कौन से कारण से और कौनसी वस्तु से—किस इच्छा को लेकर—इस संसार

को रचा करता है ?' हे भगवन् ! यह उन लोगों के कुतर्क हैं, जो आपके ऐश्वर्य की महिमा न जान कर सदैव माया-जाल में लिप्त रहा करते हैं। परन्तु—॥५॥

अजन्मानो लोकाः किमयववंतोपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भयविधिरनादृत्य भवति
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजननेकः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरतइमे ॥६॥

हे भगवन् ! अब हम उन कुतर्क-वादियों से पूछते हैं कि—'क्या यह सब अवयवों (अङ्गों) से परिपूर्ण जगत बिना किसी कर्त्ता के स्वयं बन सकता है ?' हे ईश ! इस प्रश्न पर यदि वे मन्दमति 'हां' कहते हैं, तो वे हमें बतावें कि—'इन चोदह भुवनों के उत्पन्न करने वाली वह सामग्री कहां है ?' परन्तु वे इस पर कोई उत्तर नहीं दे सकते। इसलिये कहना पड़ता है कि, यह संसार आप का ही बनाया हुआ है ॥६॥

त्रयीसांख्ययोगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्नेप्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ॥
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनाना पथजुषां
नृणामेकोगम्यत्वमसि पयसोमार्णव इव ॥७॥

हे भगवन् ! यद्यपि वेद, सांख्य, योग, शैव और वैष्णव आदि शास्त्रों से सम्बन्ध रखने वाले मनुष्य 'मेरा मत सबसे बड़ा है, मेरा मत सबसे अच्छा है'—ऐसा कहते हैं, परन्तु उन टेढे-सीधे मार्ग-गामियों को यह पता नहीं कि, अन्त में लक्ष्य हमारा एक ही है। हे भगवन् ! जैसे अन्त में सब नदियां समुद्र में मिल जाया करती हैं, उसी प्रकार सब धर्मों का लक्ष्य आप तक ही पहुँचने में है ॥७॥

महोक्षः खट्वांगं परशुरजिनं भस्मफणिनः ।
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ॥
सुरास्तांतामृद्धिंविदधति भवद्भ्रू प्रणिहितां।
नहिस्वात्मारामं विषय मृगतृष्णा भ्रमयति ॥८॥

हे भगवन् ! तेज, प्रभा, अग्नि तत्वों के स्थूल परमाणु, सब तत्वों का सार, वायु और आकाश —ये आपकी सम्पदा हैं और केवल आप ही की कृपादृष्टि से देवता लोग ऋद्धि-सिद्धि को भोगा करते हैं। परन्तु वादी का यह कहना है कि —'जब शंकर संसार को सब कुछ देता है, तो वह विषयानंद से रहित क्यों है?' इसका उत्तर यह है कि —जो अपनी आत्मा के स्वरूप में भ्रमण किया करते हैं, उन्हें विषय रूपी मृग-तृष्णा मोहित नहीं

किया करती है। अर्थात् जो ब्रह्मानंद में लीन होजाते हैं, उन्हें विषयानंद मोहित नहीं कर सकता ॥८॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्तद्ध्रुवमिदं।
पराध्रौव्याध्रौव्ये जगतिगदतिव्यस्तविषये ॥
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथनतैर्विस्मितइव।
स्तुवनजिह्रेमित्वा न खलुननु धृष्टा मुखरता॥६

हे शंकर! कोई तो इस संसार को अविनाशी कहता है और कोई नाशवान कहता है तथा कोई अविनाशी और नाशवान दोनों प्रकार का कहता है। हे भगवन्! इस प्रकार उनकी उलटी-सीधी वाणी सुनकर मुझे आश्चर्य होता है कि, उन ढीठों को आप की इस प्रकार स्तुति करते हुए, लज्जा क्यों नहीं आती ?' अब कोई ऐसा कहे कि—'यदि ऐसा ही है, तो फिर तू क्यों स्तुति करता है ?' इस पर मेरा उत्तर यह है कि—भई! मेरी यह वाणी क्या ढीठ नहीं है ? अर्थात मेरी वाणी भी तो अपनी ढीठता से ही स्तुति कर रही है ॥६॥

तवैश्वर्यंयत्नाद्यदुपरि विरिंचो हरिरधः।
परिच्छेतुं यातावनलमनिलस्कन्ध वपुषः ॥
ततोभक्ति श्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिशयत्।
स्वयतस्थेताभ्यांतवकि मनुवृतिर्न फलति ॥१०॥

हे संसारेश्वर ! आपके वायु पर्यन्त शाखा वाले तेज रूप का आदि अन्त लेने के लिए, पवन-देव ऊपर के और सूर्यदेव नीचे के लोकों को देखने के लिये गए, परन्तु आपका थाह नहीं मिला । इसके बाद जब उन्होंने, हारकर आपकी स्तुति करना आरम्भ किया, तब आपने अपने मन द्वारा उनको दर्शन दिये । इसलिये आपकी सेवा कभी निष्फल नहीं जाया करती ॥१०॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं ।
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डू परवशान् ॥
शिरः पद्म श्रेणीरचितचरणांभोरुहबलेः ।
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहरविस्फूर्जितमिदं ॥

हे तीनों तापों को नाश नरने वाले ! रावण को, जो सहज ही में तीनों लोकों को जीतने वाले अपार भुज-बल प्राप्ता हो गया था, वह केवल आपके चरण-कमलों की पूजा का ही तो फल था । अर्थात् आपके चरण-कमलों में मस्तक रगडने से ही, तो रावण को विश्व-विजयी भुज बल प्राप्त हुआ था परन्तु—॥११॥

अमुष्यत्वत्सेवा समधिगत् सारं भुजवनं ।
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसती विक्रमयतः ॥

अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि ।
प्रतिष्ठात्वय्यासीद्ध्रुवमुचितोमुह्यतिखलः ॥१२॥

हे भगवन् ! तुच्छ स्वभाव वाले मनुष्यों को वैभव मिलने पर, उन्हें अहङ्कार हो जाता है। इसलिये आपसे बल प्राप्त करके ज्योंही, ओछे रावण ने कैलाश को उठाना चाहा, त्योंही आपकी क्रूर-दृष्टि से, उसकी वह दुर्दशा हुई कि, अन्त में आपकी स्तुति की कृपा से ही उसे शान्ति मिल सकी ॥१२॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपिसती-
मधश्चक्रे बाणः परिजन विधेयत्रिभवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्नकस्याप्युन्नत्यै:भवति शिरसस्त्वय्यवनति॥१३

हे भगवन् ! आपके चरणों में एकाग्र-चित्त रखने वाले बाणासुर ने, यदि अपने वैभव से, इन्द्र की बड़ी से बड़ी समृद्धि को, नीचा दिखा दिया, तो क्या आश्चर्य हुआ ? क्योंकि भला बतायें तो सही, आपको मस्तक झुकाने वाले मनुष्यों में, किसने उन्नति प्राप्त नहीं की ? अर्थात् आपकी भक्ति करने वाले प्रत्येक जन हीवै भव-शाली हो जाया करते हैं ॥१३॥

अकाण्डब्रह्माण्ड क्षय चकित देवासुर कृपा-
विधेयस्या सीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ॥
स कल्माषः कण्ठे तन न कुरुते न श्रियमहो।
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः॥१४

हे भगवन् ! तीनों लोकों को भयभीत करने वाले महा तेज को (विष को) आपने अपने आकाश रूपी कण्ठ में धारण कर लिया है। इसी लिये आपका 'नील-कण्ठ' नाम पड़ गया है। हे भगवन् ! लोकों के दुःख दूर करने वाले सज्जनों का लांछन भी स्तुति के योग्य बन जाया करता है ॥१४॥

असिद्धार्थां नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे।
निवर्तन्ते नित्यं जगतिजयिनोयस्य विशिखाः ॥
स पश्यन्नीशत्वामितर सुर साधारण मभूत्।
स्वरःस्मर्तव्यात्मा नहि वशिषुपथ्यः परिभव॥१५

हे भगवन् ! देव, असुर और मनुष्य आदिकों को मोहित करने वाले कामदेव को, आपने अपना निरादर करने पर, उसे भस्म करते हुए यह सिद्ध कर दिया कि— 'जितेन्द्रियों का अनादर करना अच्छा नहीं हुआ करता है।' ॥१५॥

महीं पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदं ।
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ॥
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनि भृतजटाताडिततटा ।
जगद्रक्षायैत्वं नटसि ननुवामैवविभुता ॥१६॥

हे भगवन् ! जिस समय आप सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि की प्रभा को लेकर संसार में नृत्य करते हैं (जिस समय आप अपनी आकर्षण-मयी माया को लेकर नाचते हैं) उस समय पृथ्वी आकाश और सब ग्रह चलायमान हो जाया करते हैं। अर्थात् आप ही अपने आकर्षण-विकर्षण के तारतम्य से पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रहों को चलायमान किया करते हैं। इसलिये आपकी अद्भुत माया के भेद को कोई नहीं जान सकता ॥१६॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः ।
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ॥
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥१७॥

हे भगवन् ! तारागण रूपी प्राणों से सुशोभित आपके आकाश रूपी शीश में से गिरता हुआ, जो जल का प्रवाह छोटी-छोटी बूंदों के रूप में देखा जाता है,

उसने उस द्वीपाकार जगत को चारों ओर से घेर लिया है। इससे आपके शरीर की महानता का पता लगाया जा सकता है ॥१७॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो ।
रथांगे चन्द्राकौं रथचरणपाणिः शर इति ॥
दिधक्षोस्ते कोयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडंत्योनखलुनतुपर तन्त्रा प्रभुधियः ॥१८

हे भगवन्! आपका रथ पृथ्वी है, वायु सारथी है, पर्वत-राज धनुष है, सूर्य और चन्द्रमा—ये दोनों रथ के पहिए हैं और विद्युत् बाण हैं। हे संसारेश्वर! जब आपके ऐसे पदार्थों के रथ आदि हैं, तभी तो आप तीनों लोकों के सन्ताप को तिनके के समान भस्म कर देते हैं। अहो! पराये वश नहीं होने वाली आप जैसे प्रभु की बुद्धि सांसारिक पदार्थों के साथ क्रीड़ा करती हुई भक्तों को सुख प्रदान किया करती है ॥१८॥

हरिस्ते सहस्रं कमलबलिमादायपदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्र कमलम् ॥
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसो चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुर हर जागर्ति जगताम् ॥१९॥

हे भगवन् ! जिस समय सहस्र किरण-कमलों को लेकर सूर्यदेव ने आपके चरणों का पूजन करना आरम्भ किया, उस समय उनमें से एक किरण-कमल कम हो गया। यह देख उन्होंने ज्योंही अपने प्रकाश रूपी नेत्र को आपके चरण-कमलों में अर्पण किया, त्योंही आपने उसे अत्यन्त तेजस्वी करते हुए, तीनों लोकों का रक्षक बना दिया ॥२०॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्वमसि फलयोगे क्रतुमतां ।
क्वकर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ॥
अतस्त्वां संप्रेक्ष्यक्रतुषु फलदानप्रति भुवं ।
श्रुतौश्रद्धां वद्ध्वा दृढ़परिकरः कर्मसुजनः ॥२०॥

हे भगवन् ! मनुष्य वेद-वाक्यों में श्रद्धा रखकर, आपको फल दाता समझते हुए, यज्ञों का अनु-ष्ठान किया करते हैं। क्योंकि आप सर्वज्ञ और सर्वदा चैतन्य रूप हैं। परन्तु जब तक आपकी आराधना में, मनुष्यों की श्रद्धा नहीं होती, तब तक उन्हें यज्ञों का कोई फल नहीं मिला करता। क्योंकि—॥२०॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ॥

क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुषुफलविधानव्यसनिनो ।
ध्रुवंकर्तुं श्रद्धाविधुर मभिचाराय हिमखाः ॥२१॥

हे शरणागत-प्रतिपालक ! प्राणियों का स्वामी प्रजापति, जो यज्ञ क्रिया में परम-चतुर था, स्वयं यजमान था और वेद ज्ञाता देवर्षि लोग यज्ञ कराने वाले थे तथा सब प्रकार की योग्य सामग्री थी। परन्तु आपकी भक्ति में प्रेम नहीं होने के कारण उस दक्ष का यज्ञ विध्वंस हो गया। इससे निश्चय होता है कि, आप में श्रद्धा नहीं होने पर यज्ञ-कर्त्ता को उलटा ही फल मिला करता है ॥२१॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वांदुहितरं ।
गतं रोहिद् भूतांरिमयिषुमृष्यस्यवपुषा ॥
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं ।
त्रसन्तंतेद्यापित्यजतिनमृगव्याधरभसः ॥२२॥

हे भगवन् ! जिस समय सूर्यदेव, संसार की भलाई की कामना के लिए, लाल वर्ण वाली ऊषा (प्रातःकाल, पो फटने का समय) के पीछे अपना लाल रूप धारण करते हुए दौड़ा करते हैं, उस समय उन आकाशगामी और कम्पायमान मन्द किरणों वाले-सूर्य को, आप ही तेज प्रदान किया करते हैं। अर्थात् हे रुद्र भगवान् ! यह सूर्य

आपही के तेज से सर्वदा प्रकाशित होकर, संसार को प्रकाशित करता हुआ आकाश में विचरा करता है ॥२२॥

स्वलावरायाशंसा धृतधनुषमन्हाय तृणवत् ।
पुरःप्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ॥
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्ध घटना ।
दवैतित्वामद्धावतवरद मुग्धायुवतयः ॥२३॥

हे संसारेश्वर ! धनुषधारी कामदेव को आपके द्वारा भस्म होते हुए देखकर भी यदि प्रकृति देवी (योगमाया) अर्द्धाङ्गिनी होने के कारण, आपको अपने में अनुरक्त समझती है, तो यह बड़ी ही हंसी की बात है। हे भगवन् ! इस पर यह कहना पड़ेगा, कि स्त्रियां स्वभाव से ही भोली हुआ करती हैं ॥२३॥

श्मशानेस्वाक्रीडास्मरहरपिशाचाः सहचरा ।
श्चिताभस्मालेपः स्रगपिनृकरोटी परिकरः ॥
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं ।
तथापिस्मतृणां वरद परमंमङ्गलमसि ॥२४॥

हे कामारि ! आपका क्रीड़ास्थान तो नभ-मण्डल है, विषय-शून्य आपके सेवक हैं, माया की चिता-भस्म का आप लेपन किया करते हैं; और नम्रता धारण करने वाले मनुष्यों से आप प्रेम करने वाले हैं। यद्यपि सांसारिक

विषयी मनुष्य आपके इस स्वभाव को अमंगल-युक्त बतलाते हैं, परन्तु उनको यह ज्ञात नहीं कि, आपके जैसा स्वभाव रखने वाला ही स्वामी, सम्पूर्ण सुखों का दाता हुआ करता है। अतएव हे प्रभो! विषयी मनुष्यों द्वारा बतलाया गया, यह आपका अमंगल-युक्त स्वभाव भक्तों को सर्वदा भुक्ति-मुक्ति का देने वाला हो।

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः।
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः॥
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये।
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान्॥२५

हे भगवन्! समाधी लगाने वाले, सदैव भक्ति के प्रेम से रोमांचित होकर नेत्रों से जल बहाने वाले और आत्मा में निरन्तर मन लगाने वाले योगी जन, वाणी से नहीं कहे जाने वाले जिस तत्त्व को हृदय में धारण कर-अमृत मय सरोवर में गोते लगाने वालों की तरह-आनन्द में मग्न रहा करते हैं, निश्चय पूर्वक वह तत्त्व (त्वंमसि) आप ही है—॥२५॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवहः।
त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च॥

परिच्छिन्ना मेवं त्वमपि परिणता विभृतुगिरं
नविद्मस्तत्तात्वं वयमिहतुयत्वं न भवसि ।२६।

हे भगवन्! तू सूर्य है; तू चन्द्रमा है; तू अग्नि है; तू पवन है; तू जल है; तू आकाश है; तू पृथ्वी है; और तू आत्मा है—इस प्रकार कहते हुए बहुत से स्तुति कारों ने प्रथक वाणी से आपकी स्तुति की है, परन्तु वह तत्त्व कौन-सा है, जहां आप नहीं हैं? अर्थात् मैं तो सब चराचर जीवों में आप ही को देख रहा हूं—॥२६॥

त्रयींतिस्रोवृत्तिस्त्रिभुवनमथोत्रीनपिसुराः।
नकाराद्यैर्वर्णैं स्त्रिभिरभिदधत्तीर्ण विकृति ॥
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः।
समस्तंव्यस्तंत्वांशरणद गृणात्योमितिपदम् ।२७

हे भगवन्! तीनों लोकों को धारण करने वाला उदात्त अनुदात्त और स्वरित—इन तीनों वृत्तियों से युक्त, ब्रह्मा-विष्णु और महेश-इन तीनों देवों का स्वरूप, अ, उ और म्—इन तीनों वर्णों से युक्त और चौथे पद (मुक्ति) को देने वाला—सर्वोत्तम ओम् (ओ३म्) समस्त और व्यस्त (अलग-अलग और मिले हुए) शब्दों द्वारा, सदैव आपकी स्तुति किया करता है ॥ २७ ॥

भवः शर्वोरुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथाभीमेशानाविति यदविधानाष्टकमिदम् ॥
अमुस्मिन् प्रत्येकं प्रविचरतिदेवश्रुतिरपि ।
प्रियायास्मैधाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मिभवते ।२८

हे भगवन् ! भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, सहमहान् भीम औ ईशान—ये जो आपके प्रसिद्ध आठ नाम हैं, इन नामों से युक्त आपके तेजोमय स्वरूप की, वेद भगवान् भी प्रसन्नता के लिये निरन्तर स्तुति किया करता है । इसलिये हे देव ! मैं पुष्पदन्ताचार्य आपके इस नामाष्टक स्वरूप को नमस्कार करता हूँ । ॥२८॥

नमोनेदिष्ठाय प्रियदवदविष्ठाय च नमो ।
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
ननोवर्षिऽष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो ।
नमःसर्वस्मैतेतदिदमिति शर्वाय च नमः ॥२६॥

हे भक्तों को सुख देने वाले ! आपके निकटवर्ती, दूरवर्ती, अतिसूक्ष्म, अतिस्थूल, वृद्ध, तरुण और सर्वस्वरूप को मैं नमस्कार करता हूं ॥२६॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः ।
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ॥

जनसुखकृते सत्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः ।
प्रमहसि पदेनिस्त्रैगुण्येशिवाय नमो नमः ॥३०

हे भगवन् ! संसार की उत्पत्ति करने वाले आपके बहु-रजो गुणधारी भवरूप को, जगत् का नाश करने वाले आप के प्रवल तमो गुणधारी हर-रूप को और जगत का कल्याण करने वाले आप के सत्वगुण-युक्त मृड-रूप को तथा परम कल्याण करने वाले त्रिगुण-रहित आपके शिव-स्वरूप को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३०॥

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्वचेदं ।
क्व च तवगुणसीमोल्लंघिनी शश्वदृद्धिः ॥
इति चकितममन्दीकृत्यमां भक्तिराधा-
द्वरद चरणयोस्ते वाक्य पुष्पोपहारम् ॥३१॥

हे वरदायक ! कहां तो निर्बल और क्लेश से युक्त मेरा यह चित्त और कहाँ सीमा रहित आपकी अपार गुणों से युक्त महिमा ? हे भगवन् ! इस प्रकार के विचार से मुझे चकित होता हुआ देख कर, भक्ति ने मेरी बुद्धि का अज्ञान हर लिया और इसके बाद वाणी रूपी पुष्प सामग्री से, मेरे द्वारा, आपके चरण कमलों का पूजन करवाया ॥ ३१ ॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिंधुपात्रे ।
सुर तरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं ।
तदपि तवगुणानामीश पारं न याति ॥ ३२॥

हे भगवन् ! कज्जल गिरि की स्याही को समुद्र रूपी पात्र में डालकर, यदि भगवती शारदा पृथ्वी रूपी कागज पर कल्पवृक्ष की कमल से निरंतर आप की महिमाको लिखती रहे, तो आपके गुणों का पार नहीं पा सकेगी ॥३२॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले —
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ॥
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो ।
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

हे सकल गुणनिधान भगवान् शंकर ! हे देव-दैत्य और मुनीन्द्रों से सेवित ! बहुत से मनोहर श्लोकों से युक्त इस शिव महिम्नः नामक स्तोत्र को, इस पुष्पदन्ताचार्य ने निर्माण किया है। इसलिए— (३३)

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत् ।
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।

स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र ।
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥३४॥

जो कोई मनुष्य इस स्तोत्र से भगवान् शंकर की पूजा परमभक्ति और शुद्ध अन्तःकरण से—करेगा, वह इस लोक में बहुत धनवान्, बहुत पुत्र-पौत्रों वाला और दीर्घायु होकर यश को प्राप्त करता हुआ अन्त में शिव-लोक में जाकर शिव-स्वरूप हो जायगा। क्योंकि—॥३४॥

दीक्षादानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रिया ।
महिम्नस्तव पाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३५

दीक्षा, दान, तप, होम और यज्ञ आदिक जितने शुभ कार्य कहलाते हैं, उन सब का फल एकत्रित हो जाने के पश्चात् भी, महिम्नः स्तोत्र के पाठ के फल का, सोलहवां भाग भी नहीं होता ॥३५॥

समाप्तिमगमत् स्तोत्रं पुष्पगन्धर्वभाषितम् ।
अनूपमं मनोहारि पुण्यमीश्वरवर्णनम् ॥३६॥

पुष्पदन्ताचार्य द्वारा रचा हुआ यह स्तोत्र मनोहर, पुण्य-स्वरूप और उपमा रहित है तथा आदि से अन्त तक, इसमें केवल जगदीश्वर भगवान् शंकर के गुणों का ही वर्णन है ॥३६॥

महेशान्नापरोदेवो महिम्नो नापरास्तुतिः ।
अघोरान्नापरोमन्त्रोनास्ति तत्वंगुरोःपरम् ॥३७

महादेवजी से बढ़ कर कोई देवता नहीं है, महिम्नः स्तोत्र से बढ़कर कोई स्तुति नहीं है, अघोर मन्त्र से बढ़ कर कोई मन्त्र नहीं है और श्रीगुरु से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है ॥३७॥

कुसुमदशननामा सर्वगंधर्वराजः ।
शशिधरवरमौलिर्देवदेवस्यदासः ॥
स खलु निज महिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात् ।
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्य महिम्नः ॥३८॥

शिव-सेवक कुसुमदशन नाम का गन्धर्वों का राजा, भगवान् शंकर के कोप से, अपनी महिमा से भ्रष्ट हो जाने के पश्चात् इस संसार में पुष्पदन्त नाम से विख्यात हुआ। अतएव भगवान् जगदीश्वर को प्रसन्न करने के लिए, उसी ने यह शिव महम्नःस्तोत्र बनाया है ॥३८॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षेकहेतुं ।
पठति यदि मनुष्यःप्राञ्जलिर्नान्यचेताः ॥
वृजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः ।
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तः प्रणीतम् ॥३९॥

इन्द्रादिक देवता और मुनीश्वरों से पूज्य, स्वर्ग और मोक्ष के मूल कारण और पाठ करने वाले को अमोघ फल देने वाले इस पुष्पदन्ताचार्य प्रणीत शिवमहिम्नः स्तोत्र का, जो मनुष्य हाथ जोड़ कर एकाग्रचित से पाठ करेगा; वह समस्त सांसारिक सुखों को भोग कर किन्नरों से पूजित होता हुआ शिव-लोक में चला जायगा।

श्री पुष्पदन्तमुखपंकजनिर्गतेन ।
स्तोत्रेण किल्विषहरेण हरप्रियेण ॥
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन ।
सुप्रीणितो भवति भूत पतिमहेश ॥४०॥

जो मनुष्य, पुष्पदन्ताचार्य के बनाए हुए इस पाप हारी महिम्नः स्तोत्र का, जो शिवजी को अत्यन्त प्यारा है, प्रेम से पाठ करेगा, उस पर भगवान् शंकर सदैव कृपा करते रहेंगे। इसमें संशय नहीं।

एककालं द्धिकालं वा त्रिकालंःपठेत्सदा ।
भव पाशविनिमुर्क्तःशिवलोकं स गच्छति ॥४१

जो मनुष्य, इस स्तोत्र का, एक बार, दो बार वा तीन बार नित्य पाठ करेगा, वह आवागमन से छूट कर शिव-लोक को प्राप्त हो जाएगा।